विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK – 64

वर्ष ६ • बम्बई : बुद्धवर्ष २५२० • वैशाख पूर्णिमा [शक] / • दि. ३-५-१९७७ • अंक ११

कर्म-सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में :-

विपश्यना : दुःख-मुक्ति का मार्ग

कन्हैयालाल लोढ़ा, एम. ए.

विपश्यना : स्वरूप विपश्यना' शब्द 'वि'उपसर्ग पूर्वक 'पश्य' धातु से बना हुआ है। पश्य का अर्थ है दर्शन। वर्तमान में दर्शन शब्द केवल देखना अर्थ में प्रयुक्त होता है परंतु बुद्ध व महावीर के काल में पश्य या दर्शन शब्द संवेदन, साक्षात्कार या अनुभव करने के अर्थ में प्रयुक्त होता था। वि उपसर्ग 'विशेष' का द्योतक है। अतः विपश्यना शब्द का अर्थ है – विशेष रूप से दर्शन या साक्षात्कार करना।

यहां 'विशेष' से अभिप्राय यह है कि जो जैसा है उसे ठीक वैसा ही अनुभव करना अर्थात बिना किसी प्रकार की मिलावट, जोड़ व भ्रांति के वस्तुस्थिति का साक्षात्कार करना। साधारणतः मानव जो साक्षात्कार करते हैं वह राग-रंजित, द्वेष-दूषित व मोह-विमूढ़ित (मूर्छित) होकर करते हैं। अतः वह शुद्ध साक्षात्कार न होकर राग-द्वेष-मोह से युक्त अशुद्ध साक्षात्कार होता है। इसी अशुद्ध साक्षात्कार का निषेध करने के लिए यहां 'वि' (विशेष) उपसर्ग का प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में स्थिति की सच्चाई का साक्षात्कार करना ही विपश्यना है।

विपश्यना : धर्म वस्तु या प्रकृति के स्वभाव को धर्म कहा जाता है—जैसे आग का स्वभाव 'उष्णता' है। यह आग का धर्म है। इस स्वभाव का साक्षात्कार करना ही विपश्यना है। अर्थात् वस्तु या प्रकृति का वास्तविक रूप ही धर्म है और उस धर्म का साक्षात्कार या अनुभव करना ही विपश्यना है। इस प्रकार धर्म और विपश्यना एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

विपश्यना : सत्य का साक्षात्कार सत्य का साक्षात्कार बुद्धिजन्य कल्पनाओं, जल्पनाओं व मान्यताओं से नहीं होता है, अपितु अनुभव से होता है, उस सत्य पर चलने से होता है। जैसे जैसे व्यक्ति जीवन में सत्य को स्थान देता जाता है, उस पर आचरण करता है, चरण बढ़ाता है, वैसे वैसे वह सत्य की गहराई व सूक्ष्मता का अधिकाधिक साक्षात्कार करता जाता है। यह नियम है कि जो जितना सूक्ष्म होता है वह उतना ही विभु, विशेषता लिए व अधिक सक्षम होता है तथा अलौकिक, विलक्षण व अचिंत्य शक्तियों का भंडार होता है। यही नियम या तथ्य विपश्यना पर भी घटित होता है।

विपश्यना में जिस सत्य का साक्षात्कार होता है उस पर चलने से प्रकृति के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम सत्यों (सिद्धांतों, धर्मों व शक्तियों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होने लगता है। और अन्त में अपने ही में विद्यमान अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत सामर्थ्य प्रकट हो जाता है। फिर वह सर्वथा बंधनमुक्त होकर सदा के लिए भव-भ्रमण व दुःख से छुटकारा पा जाता है।

विपश्यना : ऋजु मार्ग वस्तुतः विपश्यना कोई रहस्य, जादू या चमत्कार नहीं है प्रत्युत सत्य के साक्षात्कार के क्रमिक विकास का सरल व सुगम मार्ग है। इसमें न तो कोई छिपाने की बात है और न कुछ जोड़ने की बात है, न कुछ साधन-सामग्री की आवश्यकता है और न दार्शनिक बुद्धि की, न भाषाज्ञान की आवश्यकता है। केवल अपने ही अन्तरंग में विद्यमान दर्शन व ज्ञान को स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ाना है। वस्तुतः विपश्यना अपनी ही अनुभूति से अपनी भ्रांतियों (मिथ्या-मान्यताओं) को मिटाते हुए पूर्ण सत्य व शुद्ध दर्शन व ज्ञान को प्रकट करने का मार्ग है, प्रक्रिया है। जिस पर चलने में मानव मात्र समर्थ है। भले ही वह किसी जाति का हो, किसी भी देश का हो, कोई भी व्यवसाय करने वाला हो, किसी भी आयु का हो, किशोर हो, युवा हो, वृद्ध हो, विद्वान हो, निरक्षर हो, धनवान हो, निर्धन हो, स्त्री हो, पुरुष हो।

प्रस्तुत लेख में विपश्यना-ध्यान साधना से किस प्रकार कर्म-क्षय होकर दुःख से मुक्ति मिलती है, इस पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है।

धम्म वाणी

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गि दड्ढोव तप्पति॥

-धम्मपद १०।८

बाल बुद्धि वाला मूर्ख व्यक्ति पापकर्म करते हुए होश नहीं रखता। परन्तु समय पाकर अपने उन्हीं कर्मों के कारण वह दुर्मेध ऐसे तपता है जैसे आग में जल रहा हो।

विपश्यना : आध्यात्मिक विकास की वैज्ञानि प्रक्रिया

चित्त की स्थिरता चित्त को स्थिर करने का प्रारंभिक उपाय है चित्त को श्वास के आवागमन पर लगाना। इससे चित्त का भटकना रुक जाता है, चित्त स्थिर हो जाता है। फिर श्वांस पर स्थिर चित्त को शरीर की त्वचा (चमड़ी) पर लगाया जाता है। चित्त की स्थिरता व सूक्ष्मता के कारण त्वचा पर होने वाली क्रियाओं (संवेदनाओं) का अनुभव होने लगता है। चित्त को आगे बढ़ाते हुए सिर से पैर तक, पैर से सिर तक सारे शरीर की संवेदनाओं को बार-बार देखने से चित्त की स्थिरता, समता व सूक्ष्मता बढ़ती जाती है। निरंतर के अभ्यास से यह वृद्धि अधिकाधिक होती जाती है।

समता विपश्यना में शरीर के बाहरी व भीतरी भाग के सूक्ष्म स्तरों पर चित्त को लगाने से वहां उत्पन्न होने वाली अनुकूल-प्रतिकूल संवेदनाओं का अनुभव होता है। यदि चित्त अनुकूल संवेदनाओं में राग और प्रतिकूल संवेदनाओं में द्वेष करने लगता है, उनमें हर्ष व दुःख का भोग करने लगता है तो चित्त की स्थिरता व सूक्ष्मता खो जाती है, चित्त चंचल व स्थूल हो जाता है। परन्तु उन अनुकूल-प्रतिकूल, सुखद-दुखद संवेदनाओं का अनुभव करते हुए राग-द्वेष न करके केवल उनको देखते रहना विपश्यना है। इससे समभाव प्रगाढ़ होता है, संयम स्वयं उद्भूत होता है और मन, वचन व काया की प्रवृत्तियों का संवर होता है।

दर्शनावरणीय कर्म का क्षय विपश्यना में चित्त की समता, स्थिरता, सूक्ष्मता जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे अनुभव की शक्ति बढ़ती जाती है। अर्थात दर्शन का आवरण क्षीण होता जाता है और दर्शन या अनुभव स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम रूप में विकसित होता जाता है। हमारे शरीर में व त्वचा पर प्रत्येक स्थान या अणु पर निरंतर किसी न किसी प्रकार की क्रियाएं चालू रहती हैं। परन्तु हमारे दर्शन (अनुभव) की शक्ति विकसित न होने से, दर्शन पर आवरण आने से उन क्रियाओं से जनित संवेदनाओं का दर्शन (साक्षात्कार) नहीं कर पाते हैं। परन्तु विपश्यी चित्त के संवर व संयम से दर्शनावरण को कम करते हैं जिससे उनको पहले शरीर के बाहरी स्तर पर होने वाली संवेदनाओं का दर्शन होने लगता है। फिर जैसे जैसे संटम या संवर या समताभाव बढ़ता जाता है वैसे-वैसे दर्शनावरण हटता जाता है व शरीर में मांस, रक्त, हड्डियों में उत्पन्न होने वाली क्रियाओं तरंगों का संवेदन या अनुभव करने लगता है। यहां तक की शरीर में होने वाली रासायनिक परिवर्तन की सूक्ष्मतम प्रक्रियाओं, विद्युत-चुंबकीय लहरों का भी दर्शन करने लगता है।

इस प्रकार दर्शन की शक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्तर पर प्रकट होने लगती है। फिर जैसे-जैसे समता, संयम, संवर का स्तर ऊँचा होता जाता है, बढ़ता जाता है; दर्शनावरण की निर्जरा होती जाती है जिससे दर्शन की शक्ति प्रकट होकर व्यक्त चित्त में उठने वाली लहरें, उससे बंधने वाले कर्म, अवचेतन मन में उठने वाली लहरें तथा उससे भी सूक्ष्म स्तर पर स्थित अपने पूर्व जन्म के संचित संस्कारों, कर्मों व ग्रंथियों का दर्शन करनेलगता है और संवर व निर्जरा जब अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तो दर्शन के समस्त आवरण व पर्दे हट जाते हैं। तथा राग-द्वेष के हट जाने से उसका दर्शन विशुद्ध "केवल दर्शन" हो जाता है।

ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय ज्ञान अनेक प्रकार का होता है यथा इंद्रियों के माध्यम से होने वाला शब्द वर्ण, गंध, रस व स्पर्श का ज्ञान, चिंतन व बुद्धिजन्य ज्ञान, दूसरों से सुना हुआ श्रुत ज्ञान आदि। परन्तु इन ज्ञानों से वस्तु का स्थूल व बाहरी स्तर का ही बोध होता है जिससे वस्तु की यथार्थता जो सूक्ष्म व आंतरिक स्तर पर होती है, उसका बोध नहीं होता। यह अयथार्थ ज्ञान हितकारी व कल्याणकारी नहीं होता है अतः इसे असम्यक् ज्ञान या मिथ्या ज्ञान कहा है।

विपश्यना से जैसे-जैसे दर्शन के आवरण क्षीण होते जाते है, समताभाव बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अनुभव-शक्ति बढ़ती जाती है। उस अनुभव से होने वाला ज्ञान यथार्थ (भ्रांति-रहित) सत्य व कल्याण-कारी होता होता है। ऐसा ही ज्ञान 'प्रज्ञा' या 'सम्यक् ज्ञान' कहा जाता है। इस यथार्थ-सत्य ज्ञान के संग इंद्रिय-बुद्धिजनित ज्ञान भी सम्यक् होता जाता है।

विपश्यी दर्शन या अनुभव के स्तर पर प्रत्यक्ष देखता है कि केवल बाहरी स्थूल जगत ही नहीं बदल रहा है बल्कि हमारे शरीर की त्वचा, रक्त, मांस, हड्डियों में भी प्रतिक्षण परिवर्तन, बदलाव, उत्पाद-व्यय हो रहा है। यह परिवर्तन सक्ष्म लोक (जगत) में और भी अधिक तेजी से व शीघ्रता से हो रहा है। शरीर के उपरिभाग से भीतरी भाग में शरीर में उत्पन्न विद्युत चुंबकीय लहरों में, मन में, अवचेतन मन में क्रमशः सैकड़ों-हजारोंगुना अधिक से अधिक द्रुतगति से परिवर्तन (उत्पाद-व्यय) हो रहा है। यहां तक कि लोक के सूक्ष्म स्तर पर तो यह उत्पाद व्यय एक पल में करोड़ों अरबों से भी अधिक बार होता प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

इस प्रकार विपश्यना से जैसे-जैसे दर्शन के आवरण क्षीण होते जाते हैं, वैसे वैसे संसार की अनित्यता का प्रत्यक्ष दर्शन (साक्षात्कार) होता जाता है। ऐसे अनित्य संसार में आत्मबुद्धि रखना उसे अपना मानना, उससे रक्षण व शरण की आशा करना अज्ञान है। संसार में शरण भूत नहीं है, प्रकृति के उत्पाद- व्यय प्रक्रिया से उत्पन्न रोग, जरा, मृत्यु या वियोग से कोई किसी को नहीं बचा सकता है। वह संयोग में वियोग, जीवन में मृत्यु, आशा में निराशा का दर्शन करने लगता है। इससे उसमें तन, मन, धन, जन आदि समस्त परिवर्तनशील अनित्य वस्तुओं के प्रति ममत्व व अहमत्व याने अपनेपन का आत्मभाव हटकर अनात्म-भाव की जागृति होती है। वह अपनी अनभूति के आधार पर यह भी जानता है कि रोग, बुढ़ापा, इंद्रियों की शक्ति-क्षीणता, मृत्यु, अभाव, वेदना, पीड़ा आदि तो दुःख है ही, परन्तु संसार में जिसे सुख कहा जाता है वह भी दुःख रूप ही है। कारण कि वह सुख राग व मोहजनित होता है। राग चित्त में असंख्य लहरें या तूफान उठने का रूप है। यह राग का तूफान समता के सागर की शांति को भंग कर अशांति, आकुलता, तनाव, आतुरता उत्पन्न करता है व मूर्छित बनाता है। वह भोगों के सुख में दुःख का दर्शन करने लगता है। वह देखता है कि संसार में सर्वत्र, सर्व स्थितियों में दुःख ही दुःख है। इस प्रकार, अनित्य, अशरण, दुखद संसार से संबंध स्थापित करना अज्ञान है।

विपश्यक यह भी देखता है कि संसार की उत्पत्ति-विनाश स्वरूप प्रत्येक घटना कारणकार्य के नियमानुसार घट रही है। कोई भी घटना अप्रत्याशित, आकस्मिक या अनहोनी नहीं घटती है। जो कुछ भी हो रहा है वह कर्म के नियम सिद्धान्त) विधान के अनुसार हो रहा है। जो जैसा करता है उसे उसका वैसा ही फल प्राप्त होता है। अर्थात जो भी सुखद-दुखद स्थिति प्राप्त होती है वह अपने ही कर्म का फल है। अतः उसमें न तो शिकायत या शोक को गुंजाइश है और न हर्ष को अवकाश है। उस घटना या परिस्थिति को भला-बुरा मानना या कोसना व राग-द्वेष करना अज्ञान है।

इस प्रकार सूक्ष्म दर्शन या साक्षात्कार की प्रगति से प्रज्ञा बढ़ती जाती है। उसे लोक के सूक्ष्म तत्वों का या गहन नियमों का ज्ञान अधिक से अधिक होता जाता है। उसे ग्रंथि-बंध, कर्म-विपाक, जाति स्मरण, जन्म-मरण, संवर, निर्जरा, विमोक्ष आदि का प्रत्यक्ष-स्पष्ट ज्ञान होने लगता है। जो जितना सूक्ष्म होता है वह उतना ही विभु व शक्तिशाली होता है। इस नियम के अनुसार सूक्ष्म तत्वों के प्रत्यक्षीकरण से सीमित व विकृत ज्ञान विशद् एवं शुद्ध होता जाता है। अंत में ज्ञान पर से सर्व आवरण हटकर व विकार दूर होकर निर्मल केवल ज्ञान प्रकट हो जाता है।

..... क्रमशः (अगले अंक में)

विपश्यी कैदियों के उद्गार

इस साधना से १० दिनों में मुझे सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मेरे मन में पहले से काफी शांति रहने लग गई।.....गुरुजी की वाणी बहुत ही प्रभावशाली थी व समझाने का तरीका भी अनूठा था। एक उदाहरण में बताया कि आदमी किस तरह सुखी रहकर दूसरों को भी सुख व शांति दे सकता है। जो खुद दुखी है, जिसके पास दुख के सिवाय कुछ है ही नहीं, वह किसी के जीवन में सुख कैसे बखेर सकता है। सो मैं गुरुजी के भाषणों से जीना कैसे चाहिए? इस बात से बहुत प्रभावित हुआ हूं। ..... कोई आदमी यह नहीं देख सकता कि उसके अंदर बुराइयां हैं। सो हर आदमी को अपनी बुराई अपने आप में दिखेगी तो वह उसको किसी हालत में भी नहीं रखेगा। मैं खुद भी 'जिओ और जीने दो' की नीति पर चलने वाला था। पर आदमी यह नहीं जानता कि किन बुरे संस्कारों के कारण किन विपदाओं में पड़ जाता है! सो मैं गुरुजी के विचारों से बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ हूं। लेकिन इन सब बातों को यदि हम केवल पढ़ने के बजाय एक-एक करके जीवन में उतारें तो हमारा जीवन बहुत ही सुखी हो सकता है। वैसे मैं किसी जाती के धर्म में पहले से ही विश्वास नहीं करता था। गुरु नानकजी की बाणी जरूर पढ़ता था लेकिन पहले से ही ऐसा विचार था कि पढ़ने के बजाय जो पढ़ा जाय उस पर अमल किया जाय। क्योंकि करीब-करीब धर्म सभी एक हैं। केवल समझने में फर्क है। सभी धर्मों में पंचशील का पालन करना है। सभी में झूठ न बोलना, शराब न पीना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना सिखाया गया है। लेकिन सोसायटी गलत होने से आदमी भटक जाता है। सो विपश्यना से आदमी अगर अपनी भलाई-बुराई देख सके तो इससे बढ़कर कल्याणकारी रास्ता इस दुनिया में नहीं हो सकता।

हरफूलसिंह, अपराध-कत्ल, सजा-बीस वर्ष।

विपश्यना सीखना मानव को एक नया जीवन देना है। मानव अपने अंदर की गहराइयों को छोटे-छोटे टुकड़ों में देख सकता है। मानव का धर्म याने कुदरत का सच्चा कानून ही विपश्यना है। उसे सही रूप से देखना है। अपने चित्त को एकाग्र करना और फिर अपने शरीर की अन्दरूनी यात्रा करनी, जो भी शरीर में अथवा शरीर के हिस्सों में हलचल हो उसके प्रति एकदम सचेत होना, उसको गहराई से देखना। इसी तरह देखते गए, चलते गए, पूरे शरीर की यात्रा करते गए। अपने दिल में जो बुराई थी, लालच थी, मोह था और बुरी भावनाओं की जितनी पर्तें दिल में जमी हुई थी, अपने आप सब छोड़ गई और मैं तो अपने अनुभव से कहता हूं कि मुझे बहुत ही शांति प्राप्त हुई है। इस साधना ने मन को शांत किया है तथा मन ने बुराइयों को तज दिया है। क्यों कि विपश्यना में बैठने से पहले पांच शील के व्रत धारण किए। इससे मन दृढ़ हुआ व अपने आपको भलीभांति गहराईयों से भी देखा। मन की गांठें खोल दी। मन एकदम साफ हो गया। सचमुच एक नया जीवन मिल गया। मैं यह वायदा करता हूं कि मुझे यह जो विपश्यना के बारे में शिक्षा मिली है, इसे जिंदगी भर करता रहूंगा। ऐसा मंगल सब का हो, ऐसा जीवन सबका हो जाय। ..... मैं अपनी माताजी को, पत्नी को व बच्चों को भी यह विपश्यना सिखाऊँगा।

फतेहसिंह, अपराध-कत्ल, सजा-बीस वर्ष।

मुझे इस विपश्यना साधना से बहुत-बहुत लाभ हुए हैं। सारे शरीर का अनुभव हुआ। धड़कने मालूम हुई। अन्दर के ज्ञानका अनुभव हुआ। दिल का मैल धुला। मन की गांठें खुली, सारा शरीर हल्का हुआ। फूल की तरह हल्कापन महसूस होने लगा। सारा ध्यान इस साधना में लगा। इस साधना से दिल को आनंद मिला। एक अद्भुत प्रेरणा मिली। दूसरों के प्रति प्रेम बढ़ा। प्रेम की प्रेरणा जागी और घृणा का नाश हुआ। प्रेम का उदय हुआ। शरीर की गंदी आदतों का या विकारों का अन्त हुआ। शरीर का अन्दर का बंधन टूटा। सच्चे धर्म का ज्ञान हुआ। अच्छा जीवन बनाने की प्रेरणा मिली। अपना कल्याण मिला, दूसरों का कल्याण मिला। संकटों का रास्ता टल गया। सुख का रास्ता सामने आया। जीवन का अन्धकार दूर हुआ और जीवन का प्रकाश मिला।

दौलतराम, अपराध-कत्ल, सजा-आजीवन।

साधना-शिविर में भाग लेने से मानसिक शांति प्राप्त हुई। चिंताओं से मुक्ति मिली। शारीरिक विकास का भी यह एक अनुपम साधन है। चरित्र-निर्माण के लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे विचार भी शुद्ध होते हैं।

मुकुन्द बिहारी, अपराध-कत्ल, सजा-आजीवन।

विशेष सूचना

प्रसन्नता की बात है कि इगतपुरी का केन्द्र (विपश्यना विश्व विद्यापीठ) समुचितरूप से कार्यक्षम हो चुका है। अतः सभी साधकों को चाहिए कि भविष्य में ट्रस्ट के पते पर पत्राचार करने के बजाय सब प्रकार के पत्राचार 'विद्यापीठ' के पते पर ही करें, ताकि समय पर समुचित उत्तर दिया जा सके।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक	१३७	इगतपुरी	दिनांक २२–५–७७ से २–६–७७ तक (हिन्दी)
,, ,,	१३८	,,	दिनांक २–६–७७ से १३–६–७७ तक (हिन्दी)

संपर्क :– व्यवस्थापक, विपश्यना विश्वविद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३ (नासिक)

शिविर क्रमांक	१३९		दिनांक १–७–७७ से ११–७–७७ तक (आरक्षित)
,, ,,	१४०	मद्रास	दिनांक १५–७–७७ से २६–७–७७ तक (हिन्दी)

संपर्क :– १) श्री. बाळकृष्ण गोइन्का, ११५–बी, नेताजी सुभाषचंद्र बोस रोड, मद्रास ६००००१. फोन नं. ३९१२३/४
२) श्री. बांकेलाल गुप्ता, ३३, सेम्बूदास स्ट्रीट, मद्रास ६००००१. फोन नं. २५३२३

शिवीर क्रमांक	१४१	हैदराबाद	दिनांक २८–७–७७ से ८–८–७७ तक (हिन्दी)
,, ,,	१४२	,,	दिनांक २२–८–७७ से २–९–७७ तक (,,)
,, ,,	१४३	,,	दिनांक ३–९–७७ से १४–९–७७ तक (अंग्रेजी)

संपर्क :– श्री. रतीलाल एम. मेहता, द्वारा–विपश्यना अन्तरराष्ट्रीय साधना केन्द्र, कुसुम नगर, हैदराबाद ५०० ०३५ (आं. प्र.) फोन नं. ५९२५९.

नोट :– १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें ।
२) अंग्रेजी शिविरों में हिंदी प्रवचन सुनने हेतु हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहेगी।
३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

मेसर्स बी. एच. देसाई एण्ड कम्पनी
३/१० शंकर प्रकाश, न्यू नागरदास रोड, अन्धेरी (पूर्व)
बम्बई – ४०० ०६९. फोन नं. ५७६०७२.
की मंगल कामनाओं सहित

मेसर्स पूर्णिमा ड्रेसेस
४–४–२०५, सुलतान बाजार, हैदराबाद–५०० ००१.
की मंगल कामनाओं सहित

दोहे धर्म के

कर्म हमारी माय है, कर्म हमारा बाप ।
अपने अपने कर्म से, जनमें अपने आप ॥
सुख दुख अपने कर्म के, आवें ज्यूं दिन रैन ।
तू क्यूं खोए बावला ! अपने मन की चैन ?
विपदा में ही धर्म की, सही परीक्षा होय ।
मन मैला होवे नहीं, तो ही मंगल होय ॥
अपने मन का मैल ही, अपना नाश कराय ।
ज्यूं लोहे का जंग ही, लोहे को खा जाय ॥
पके चित्त के कर्म फल, जब उदीर्ण होय ।
नए कर्म बांधे नहीं, स्वतः निर्जरा होय ॥
एक एक कर कर्म की, ग्रंथि सुलझती जाय ।
ऐसी विमल विपश्यना, चित्त विमल हो जाय ॥

दूहा धरम रा

ज्यूं गायां कै झुंड मँ, बाछो ढूंढै मांय ।
त्यूं कर्ता नैं करमफल, स्वयं खोजतो आय ॥
निज करमां को फल पकै, छावै काळ अंधेर ।
मत कोई नैं दोस दे, देख दिनां को फेर ॥
राजा नल भीखो पड़्यो, खूंटी निगळी हार ।
दैन्य और दुत्कार मँ, बदल गयो सत्कार ॥
विपदा आयी देख कर, मत तड़पै मत रोय ।
सिर नीचो कर सहन कर, अन्त भलो ही होय ॥
मत रो, मत रो बावला ! देख दिनां को फेर ।
अै दिन सदा न रै' वसी, मिटसी देर सबेर ॥
प्रभुता आयां बावळा ! मत अकड़ै इतराय ।
नम्र र' यां मंगल सधै, प्रभुता र' वै क जाय ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : **मधु काबरा,** सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : **अक्षरचित्र मुद्रणालय** सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१
विज्ञापन : आधा पृष्ठ ४००/–, चौथाई २०० /–, वार्षिक शुल्क रु. ५/, आजीवन शुल्क ५१/–

"विपश्यना"
पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरी इगतपुरी, ४२२ ४०३.
(नासिक – महाराष्ट्र)

To